International Journal of Information Movement Vol.2 Issue V (September 2017)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 108-111

विनय.पत्रिका में रक्षिष्यतीति विश्वासः का भाव

निर्मला निठारवाल
सहायक प्रवक्ता, हिन्दी–विभाग
डी.ए.वी. महाविद्यालय, अबोहर (पंजाब)

रक्षिष्यतीति विश्वासः का अर्थ है– भक्त को अपने आराध्य पर पूर्ण विश्वास होना कि मेरी रक्षा तो मेरे प्रभु ही करेगें क्योंकि वे ही समर्थ है। भक्त को एकमात्र अपने भगवान् पर ही भरोसा है।

"कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामभयङ्कर।
त्वमे को दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः।।"[प]

अर्थात् श्री कृष्ण! तुम सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा हो। तुम्हारी शक्ति अनन्त है। तुम्हीं भक्तों को अभय देने वाले हो। जो संसार की धधकती हुई आग में जल रहे हैं, उन जीवों को उससे उबारने वाले एकमात्र तुम्हीं हो। इसी प्रकार का एक और उदाहरण निम्न हैं–

"पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते।
नान्यं त्वदमयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम्।।"[पप]

अर्थात् देवाधिदेव! जगदीश्वर! आप महायोगी हैं। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतिरिक्त इस लोक में मुझे अभय देने वाला और कोई नहीं है; क्योंकि यहाँ सभी परस्पर एक–दूसरे की मृत्यु के निमित्त बन रहे हैं। इस प्रकार भक्त केवल अपने आराध्य पर भरोसा करता है, कि प्रभु आप ही एकमात्र समर्थ हैं। आप ही मेरी रक्षा कर सकते हैं।

"कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो।
त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद् भक्तवत्सल।।"[पपप]

अर्थात् और बोले–प्यारे श्रीकृष्ण! तुम बड़े भाग्यवान् हो। अब तो कृष्ण! केवल तुम्हारे ही भाग्य से हमारी रक्षा होगी। प्रभो! इस सारे गोकुल के एकमात्र स्वामी, एकमात्र रक्षक तुम्हीं हो। भक्तवत्सल। इन्द्र के क्रोध से अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो। इस प्रकार भक्त को अपनी कठिन से कठिन परिस्थिति में यह विश्वास रहता है कि प्रभु उसकी रक्षा करेगें। इस प्रकार भगवान् की रक्षण–शक्तियों में भक्त का अटल विश्वास होना ही रक्षा का विश्वास है। भक्त का यह अडिग विश्वास होता है कि भगवान् उसकी सदा रक्षा करेगें, वे प्रणतपाल एवं शरणागत रक्षक जो हैं। "यही तत्त्व है जो प्रपन्न साधक में पूर्ण आस्तिकता का प्रवर्तन करता है।"[पअ] कबीर की बानियों में सर्वत्र इस अंग के उदाहरण मिलते हैं–

"अब मोहि राम भरोसो तेरा, और कौन का करौं निहोरा"[अ]

इस प्रकार भक्त को अपनी कठिन से कठिन परिस्थिति में यह विश्वास रहता है कि प्रभु उसकी रक्षा करेगें। संसार में माता, पिता, बन्धु, पुत्र, सम्बन्धी–सब भले ही साथ छोड़ दें, विश्वासघाती बन बैठें, पर प्रभु साथ नहीं छोड़ेगें–यह विश्वास जीवन–यात्रा में भक्त के लिए सम्बल का कार्य करता है। भगवान् की रक्षण–शक्तियों में भक्त का अटल विश्वास होना ही रक्षा का विश्वास है। भक्त को अपने भगवान् में विश्वास होता है तभी तो वह संसार (अनित्य) को छोड़कर ईश्वर (नित्य) के चरणों की शरण लेता है। वह जानता है कि मेरे भगवान् मुझे जरूर अपनायेगें क्योंकि वे शरणागतवत्सल हैं और शरण में आने पर भक्त को अपने गले से लगा लेते हैं तथा उसे भवसागर से पार कर देते हैं। ईश्वर में दृढ़ विश्वास का होना ही रक्षिष्यतीति विश्वासः हैं। "भक्त का यह अडिग विश्वास है कि भगवान् रक्षक हैं, वे सदा से भक्तों की रक्षा करते आये हैं और करेंगे। भगवान् को भक्ति के आलंबनरूप में ग्रहण करने के लिए भक्त के मन में इस महाविश्वास का होना आवश्यक है।"[अप] तुलसी को अपने राम पर अडिग विश्वास है। सूर की रचनाओं में रक्षा का यह दृढ़ विश्वास विद्यमान है–

"जाकौं मन मोहन अंग करै।
ताकौ केस खसै नहिं सिर तैं, जौ जग बैर परै।।
हिरनकसिपु–परहार थक्यौ, प्रहलाद न नैकुँ डरै।
अजहूँ लगि उत्तानपाद–सुत, अविचल राज करै।
राखी लाज द्रुपद तनया की, कुरुपति चीर हरै।

दुरजोधन कौ मान भंग करि बसन–प्रवाह भरै।
जौ सुरपति कोप्यौ व्रज ऊपर क्रोध न कछू सरै।
ब्रज–जन राखि नंद कौ लाला, गिरिधर बिरद धरै।
जाको विरद है गर्ब–प्रहारी, सो कैसैं बिसरै?
सूरदास भगवंत–भजन करि, सरन गए उबरै।।"[अपप]

अर्थात् "जिसको श्री कृष्ण अपना लें, उसके केश सिर से खिसकते नहीं चाहे संसार उससे शत्रुता कर ले। हिरण्यकश्यप प्रहार करते हुए थक गया किन्तु प्रहलाद तनिक भी न डरा। (प्रभु कृपा से) आज भी (राजा) उत्तानपाद के पुत्र (ध्रुव) अविचल राज्य कर रहे हैं। जब कुरुपति साड़ी खींच रहे थे तब (प्रभु ने) द्रुपदकन्या (द्रौपदी) की लज्जा रखी। दुर्योधन के मान को भंग करके वस्त्र के प्रवाह को (पूर्णरूप से) भर दिया। जब देवराज (इन्द्र) ने व्रज पर क्रोध किया तब उनके क्रोध से कुछ भी प्रभाव न पड़ा। श्री कृष्ण ने गोवर्धन को धारण करके व्रजवासियों की रक्षा की जिससे उनकी बड़ाई बढ़ी। जिसका यश ही घमंड को चूर करनेवाला है, उसे कैसे भूला जाय? सूरदास कहते हैं–भगवान् का भजन करो, उनकी शरण में जाने से ही मुक्ति मिलती है।"[अपपप] इस प्रकार सूरदास कहते हैं कि मनुष्य जन्म पाकर आयु को व्यर्थ नहीं गवाँना चाहिए। हर समय भगवान् का भजन करते रहना चाहिए। प्रभु के चरणों में जाने से सभी विषय–विकार स्वतः नष्ट हो जाते हैं तथा आत्मा निर्मल होकर प्रभु प्रेम में सरोबार हो जाती है। इस प्रकार भक्त का अपने आराध्य पर भरोसा रखना ही रक्षिष्यतीति विश्वासः है। इसी प्रकार तुलसी को अपने आराध्य राम पर दृढ़ विश्वास है। वे अपने भगवान् राम को जीवन का आधार मानते हैं, उन्हें राम की रक्षा पर पूर्ण विश्वास है। तुलसी ने लिखा है कि जब भगवान् राम ने बड़े–बड़े आर्त्तों एवं अनाथों की रक्षा की है तो वे भला तुलसी की रक्षा क्यों न करेंगे, ऐसे अडिग विश्वास से ओत–प्रोत प्रस्तुत पद(226)–

"भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान फरो।।
करम उपासन, ग्यान, बेदमत, सो सब भाँति खरो।
मोहि तो 'सावन के अंधहि' ज्यों सूझत रंग हरो।।
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम–सुधारस पेखत परुसि धरो।।
स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरो–नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक–तरो।।
प्रीति–प्रतीति जहाँ जाकी, तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय–बाप दोउ आखर, हौं सिसु–अरनि अरो।।
संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम–नामहि ते तुलसिहि समुझि परो।।"[पग]

अर्थात् जिसे दूसरे का भरोसा हो, सो करे। मेरे लिये तो इस कलियुग में एक राम–नाम ही कल्पवृक्ष है, जिसमें कल्याणरूपी फल फला है। भाव यह कि राम–नाम से ही मुझे तो यह भगवत् प्रेम प्राप्त हुआ है। यद्यपि कर्म, उपासना और ज्ञान–ये वैदिक सिद्धान्त सभी प्रकार से सच्चे हैं, किन्तु मुझे तो, सावन के अन्धे की भाँति, जहाँ देखता हूँ वहाँ हरा–ही–हरा रंग दीखता है। (एक राम–नाम ही सूझ रहा है)। मैं कुत्ते की नाईं (अनेक जूँठी) पत्तलों को चाटता फिरा, पर कभी मेरा पेट नहीं भरा। आज मैं नाम–स्मरण करने से अमृतरस परोसा हुआ देखता हूँ। (मैनें अनेक देवभोग्य भोग भोगे, परन्तु कहीं तृप्ति नहीं हुई। पूर्ण, नित्य परमानन्द कहीं नहीं मिला। अब श्री राम–नाम का स्मरण करते ही मैं देख रहा हूँ, कि मुक्ति का थाल मेरे सामने परोसा रखा है अर्थात् ब्रह्मानन्दरूप मोक्ष पर तो मेरा अधिकार ही हो गया। परोसी थाली के पदार्थ को जब चाहूँ तब खा लूँ, इसी प्रकर मोक्ष तो जब चाहूँ तभी मिल जाय। परन्तु मैं तो मुक्त पुरुषों की कामना की वस्तु श्री राम–प्रेम–रस का पान कर रहा हूँ।) मेरे लिये राम–नाम स्वार्थ और परमार्थ दोनों का ही साधक है, (मुक्तिरूपी स्वार्थ और भगवत्प्रेमरूपी परम अर्थ दोनों ही मुझे श्री राम–नाम से मिल गये)। यह बात 'हाथी है या मनुष्य' की –सी दुविधा भरी नहीं है, (क्योंकि मुझे तो प्राप्त है)। मैंने सुना है कि इसी नाम के प्रभाव से बंदरों की सेना पत्थरों का पुल बनाकर समुद्र को पार कर गयी थी। जहाँ जिसका प्रेम और विश्वास है, वहीं उसका काम पूरा हुआ है। (इसी सिद्धान्त के अनुसार) मेरे तो माँ–बाप ये दोनों अक्षर–'र' और 'म' – हैं। मैं तो इन्हीं के आगे बालहठ से अड़ रहा हूँ, मचल रहा हूँ। यदि मैं कुछ भी छिपाकर कहता होऊँ तो भगवान् शिवजी साक्षी हैं, मेरी जीभ जलकर या गलकर गिर जाय। (यह 'कवि–कल्पना' या अत्युक्ति नहीं है, सच्ची स्थिति का वर्णन है) यही समझ में आया कि अपना कल्याण एक राम–नाम से ही हो सकता है। इस प्रकार तुलसीदास अपने आराध्य श्रीराम को अपने जीवन का आधार मानते हैं उन्होंने अपना सम्पूर्ण प्रेम एकत्रित करके भगवान् श्रीराम के चरणों में लगा

दिया है, क्योंकि उनको केवल अपने प्रभु में आसक्ति है। संसार को वे असत्य समझते हैं तथा नश्वर मानकर त्यागने का संदेश देते है। इस प्रकार जहाँ जिसका प्रेम और विश्वास है, वहीं उसका काम पूरा हुआ है। इसलिए तुलसीदास अपने आराध्य श्रीराम पर पूर्ण भरोसा रखते हैं–

"भरोसो और आइहै उर ताके।
कै कहुँ लहै जो रामहि–सो साहिब, कै अपनो बल जाके।।
कै कलिकाल कराल न सूझत, मोह–मार–मद छाके।
कै सुनि स्वामि–सुभाउ न रह्यो चित, जो हित सब अँग थाके।।
हौं जानत भलिभाँति अपनपौ, प्रभु–सो सुन्यो न साके।
उपल, भील, खग, मृग, रजनीचर, भले भये करतब काके।।
मोको भलो राम–नाम सुरतरु–सो, रामप्रसाद कृपालु कृपा के।
तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय–बबा के।।"[गा]

अर्थात् उसी के मनमें किसी दूसरे का भरोसा होगा, जिसे या तो कहीं श्रीरामचन्द्रजी के समान कोई दूसरा मालिक मिल गया हो, या जिसके अपने साधन आदि का बल हो (मुझे न तो कोई ऐसा मालिक ही मिला है, और न किसी प्रकार का साधन–बल ही है)। अथवा जिसे अज्ञान, काम और अभिमान में मतवाला हो जाने के कारण कराल कलिकाल न सूझता हो अथवा जिसके चित्त पर सब प्रकार से (साधन करके, और इधर–उधर भटककर) थके हुए लोगों के हितकारी स्वामी रामचन्द्रजी का (दीन और शरणागतवत्सल) स्वभाव सुनने पर भी उसका स्मरण न रहा हो। (मुझे तो अपने स्वामी के दयालु स्वभाव का सदा ध्यान बना रहता है)। मैं तो अपने (क्षुद्र) पुरुषार्थको भी भलीभाँति जानता हूँ, एवं मैंने श्री रघुनाथजी के अतिरिक्त और किसी स्वामी की ऐसी कीर्ति भी नहीं सुनी (जो इस तरह महापापी शरणागतों को अपना लेता हो।) पत्थर की (अहल्या), भील, पक्षी (जटायु), मृग (मारीच) और राक्षस (विभीषण) इन सबों में किसके कर्म शुभ थे? (किन्तु भगवान् ने इन सबका उद्धार कर दिया)। मेरे लिये तो एक राम–नाम ही कल्पवृक्ष हो गया है, और वह कृपालु श्रीरामचन्द्र जी की कृपा से हुआ है। (इसमें भी मेरा कोई पुरुषार्थ नहीं है)। अब तुलसी इस अनुग्रह के कारण ऐसा सुखी और निश्चिन्त है, जैसे कोई बालक अपने माता–पिता के राज्य में होता है।" इस प्रकार तुलसीदास को अपने आराध्य की शरण में आने पर परम प्रसन्नता हो रही है। भगवान् मेरी रक्षा करेंगे तुलसी इस अनुग्रह के कारण सुखी और निश्चिन्त हैं। उन्हें अपने प्रभु के अलावा किसी दूसरे का भरोसा नहीं है। उनको अपने भगवान् के शरणागतवत्सल रूप का हमेशा स्मरण रहता है अतः वे अपने प्रभु को छोड़कर अन्य किसी का भरोसा नहीं करते–

"नाम राम रावरोई हित मेरे।
स्वारथ–परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे।।
जननी–जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।
मोहुँसो कोउ–कोउ कहत रामहि को, सो प्रसंग केहि केरे।।
फिरयौ ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखउ दुखित मोहि हेरे।
नाम–प्रसाद लहत रसाल–फल अब हौं बबुर बहेरे।।
साधत साधु लोक–परलोकहि, सुनि गुनि जतन घनेरे।
तुलसी के अवलंब नामको, एक गाँठि कइ फेरे।।"[गप]

अर्थात् हे रामजी! आपका नाम ही मेरा तो कल्याण करने वाला है। यह बात मैं हाथ उठाकर स्वार्थ के और परमार्थ के सभी संगी–साथियों से (परिवार के लोगों से और साधकों से) पुकारकर कहता हूँ (घोषणा कर रहा हूँ)। माता–पिता ने तो मुझे उत्पन्न करके ही छोड़ दिया था ब्रह्मा ने भी अभागा और कुछ बेढब–सा बनाया था। फिर भी कोई–कोई मुझे 'रामका' (दास) कहते हैं, यह किस अभिप्राय से कहते हैं? (यह राम–नामका ही प्रताप है)। जब मैं राम–नाम के शरण नहीं हुआ था तब मैं पेट भरने को (द्वार–द्वारपर) ललचाता फिरता था। मेरी ओर देखकर दुःख को भी दुःख होता था (मेरी ऐसी बुरी दशा थी)। श्रीराम की कृपा से पहले मेरे लिये जो बबूल और बहेड़े के वृक्ष थे, उन्हीं पेडों से मुझे अब आम के फल मिल रहे हैं। (जहाँ जगत् दुःखों से भरा भासता था वहाँ आज सब 'सीय–रामरूप' दीखने के कारण वही सुखमय हो गया है)। संतजन तो (शास्त्रों को) सुनकर और (उसके अनुसार) मननकर अनेक साधनों से अपना लोक और परलोक बना लेते हैं, परन्तु तुलसी के तो एक रामनाम का ही अवलम्बन है। जैसे गाँठ तो एक ही होती है, लपेटे चाहे जितने हों (इसी प्रकार साधन चाहे जितने हों, सबका आधार तो एक राम–नाम ही है)। इस प्रकार तुलसीदास अपने राम को ही सब कार्यों के कर्ता मानते हैं तथा अपने जीवन का आधार मानते हैं। राम को पाकर ही उनका जीवन सुखमय तथा आनन्ददायक हुआ है।

संदर्भ–सूची

i महर्षि वेदव्यास–प्रणीतः 'श्रीमद्भागवतमहापुराण', (प्रथम खण्ड), पृ॰ 109, (1/7/22)

ii वही, पृ॰ 114, (1/8/9)

iii महर्षि वेदव्यास–प्रणीतः 'श्रीमद्भागवतमहापुराण',(द्वितीय खण्ड), पृ॰ 295, (10/25/13)

iv त्रिगुणायत, गोविन्दः 'कबीर की विचारधारा', पृ॰ 342

v श्यामसुंदरदास (सं॰): 'कबीर ग्रंथावली', पृ॰ 124

vi सिंह, उदयभानुः 'तुलसी–दर्शन–मीमांसा', पृ॰ 313

vii वाजपेयी, नंददुलारेः 'सूरसागर',(पहला खंड), पृ॰ 13, (पद–37)

viii बाहरी, हरदेव (सं॰): 'सूरसागर सटीक'(प्रथम भाग), पृ॰ 19

ix तुलसीदासः 'विनय–पत्रिका', पृ॰ 281–282, (पद–226)

x वही, पृ॰ 280–281, (पद–225)

xi वही, पृ॰ 283, (पद–227)